सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तक : मानसिकता में परिवर्तन?

दीप्ति प्रिया मेहरोत्रा

एनसीएफ़ 2005 के अन्तर्गत तैयार की गई सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकें मानसिकता में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाने की उम्मीद से इन्सान के विभिन्न पूर्वाग्रहों का सामना करने का प्रयास करती हैं। उनकी रचना इस तरह से की गई है कि वे विविधता, लोकतांत्रिक मूल्यों, समीक्षात्मक चिन्तन और प्रश्न पूछने जैसी बातों का आदर करना सिखाएँ। जैसा कि व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है, इन पाठ्यपुस्तकों को एक प्रगतिशील शैक्षिक, सामाजिक और राजनीतिक समझ *(रितुबाला और जोशी, 2008-09: 29-42)* के साथ तैयार किया गया है। इन पाठ्यपुस्तकों की सामग्री आकर्षक, विविधतापूर्ण और आनन्ददायी है : दुनिया और स्कूल के बीच की दीवार तोड़ दी गई है और बच्चा दुनिया से सम्बन्धित अपने समृद्ध अनुभवों को कक्षा में ला सकता है *(राय, 2006: 152-57)*। लेकिन साथ ही हमें यह भी याद रखना चाहिए कि पाठ्यपुस्तक कोई जादू की छड़ी नहीं है और न ही परिवर्तनकारी शिक्षा का कोई वाहन है। वास्तव में कक्षा और बच्चे की दुनिया से गुज़रने वाली पाठ्यपुस्तक की इस यात्रा में कई मुश्किलें हैं।

सामाजिक विज्ञान पूरे मानव जीवन की बात करता है जिसमें हमारे कार्य और भावनाएँ भी शामिल हैं। बच्चे हर समय और हर जगह मानव अभिकरण, रचनात्मकता और सम्भावनाओं के बारे में सीखते हैं और इससे उन्हें अपने क्षितिज का विस्तार करने और अपने पूर्वाग्रहों पर सवाल उठाने के लिए प्रोत्साहन मिल सकता है। तीसरी कक्षा की ईवीएस पाठ्यपुस्तक के अध्याय *भोजन अपना अपना (एनसीईआरटी, 2007a: 38-44)* में विभिन्न घरों में पकाए गए विभिन्न प्रकार के भोजन के बारे में चर्चा की गई है। इसके पीछे इरादा यही है कि विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार के व्यवहार्य खाद्य पदार्थों और खाद्य संस्कृतियों की सराहना करने और शुरू से ही मन में बसे हुए पूर्वाग्रहों से लड़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। वास्तव में यह सम्भव है। खुले विचारों वाले कल्पनाशील शिक्षक के हाथों में यह चर्चा के लिए समृद्ध सामग्री प्रदान कर सकता है और संस्कृति, वर्ग, जाति, लिंग और धर्म के मतभेदों के बारे में आपसी समझ को मज़बूत कर सकता है।

लेकिन यही तरीक़ा पूरी तरह से ग़लत भी साबित हो सकता है विशेष रूप से अगर शिक्षक असंवेदनशील या नितान्त पूर्वाग्रही हो। उदाहरण के लिए अगर शिक्षक यह मानते हैं कि 'माँसाहारीवाद बुरा है', तो सम्भव है कि वे अपनी कक्षा में इस धारणा को इस तरह से प्रस्तुत करें जिससे कुछ बच्चे अपने को श्रेष्ठ महसूस करें और अन्य ख़ुद को छोटा और अपमानित महसूस करें। इस तरह के हस्तक्षेप सीखने की प्रक्रिया को कमज़ोर कर सकते हैं, विकृत कर सकते हैं या यहाँ तक कि नष्ट भी कर सकते हैं। सामाजिक विज्ञान के मामले में यह ख़तरा सबसे गम्भीर है क्योंकि इसमें मानवीय पूर्वाग्रह, भावनाएँ और मान्यताएँ सर्वाधिक गहन होती हैं।

ईवीएस की चौथी कक्षा की पाठ्यपुस्तक *(एनसीईआरटी, 2007b: 62)* से उद्धृत यही बात इस तरह के सवालों के साथ भी है कि *तुम किन-किन वाहनों में बैठे हो?* फिर : *तुम्हें सबसे ज़्यादा मज़ा किस वाहन में सफ़र करने पर आया? क्यों?*, हो सकता है कि जिस बच्चे ने विभिन्न प्रकार के वाहनों में बहुत सारी यात्राएँ की हैं, वह ख़ुद को उस बच्चे से बेहतर समझे जो शायद ही कहीं बाहर गया हो या जिसने बमुश्किल किसी वाहन का उपयोग किया हो। लेकिन अगर शिक्षक अच्छी तरह से तैयार और लोकतांत्रिक विचारधारा वाला हो तो उसी स्थिति को एक ऐसे अवसर में बदलने में सक्षम होगा जिसमें आपसी चर्चा और परस्पर अधिगम किया जा सके।

मुद्दा यह है कि बच्चों के अनुभवों को कक्षा में लाने से एक सहवर्ती ज़िम्मेदारी बनती है। जब पारस्परिक मतभेद और व्यक्तिगत कमज़ोरियाँ खुलकर सामने आती हैं तो शिक्षा प्रणाली को परिणामों को सम्हालने के लिए तैयार होना चाहिए।

शिक्षक और पाठ्यपुस्तक की शक्ति

बच्चे अपने घर और अन्य जगहों पर जीवन के जिन अनेक रूपों का अनुभव करते हैं, उन्हें कुछ समय पहले तक भी शायद ही कभी कक्षा में स्थान दिया गया हो *(भट्टाचार्य, और अन्य, 2008-09)*। एनसीईआरटी पाठ्यपुस्तकों ने कक्षा के भीतर अपने अनुभवों को साझा करने के लिए बच्चों को सजग रूप से आमंत्रित करके इस प्रवृत्ति को बदलने की कोशिश की है। इसके साथ ही किंचित विरोधाभासी रूप से, पाठ्यपुस्तक की भूमिका को कम महत्त्व देने का प्रयास भी है। पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों पर एनसीएफ़-2005 के आधार पत्र में कहा गया है "वर्तमान में लगभग देश के सभी स्कूलों की कार्यशैली पूरी तरह से पाठ्यपुस्तकों पर निर्भर करती है," *(एनसीईआरटी, 2006, पृ. viii)*।

ये नई पाठ्यपुस्तकें अपने स्वयं के उपयोग को सीमित करने का प्रयास करती हैं। तीसरी और चौथी कक्षा की ईवीएस पाठ्यपुस्तकों में अभिभावकों और शिक्षकों के नोट में कहा गया है "पाठ्यपुस्तक शिक्षक द्वारा प्रयुक्त कई शिक्षण-अधिगम सामग्रियों में से केवल एक है। लिहाज़ा इस पाठ्यपुस्तक को शिक्षकों के लिए एक सहायक सामग्री के रूप में देखा जाना चाहिए, जिसके इर्द-गिर्द शिक्षक अपने शिक्षण को संगठित कर सकें ताकि बच्चों को सीखने के अवसर मिल पाएँ।" *(एनसीईआरटी, 2007a: xi, एनसीईआरटी, 2007b: vii)*।

चूँकि एनसीएफ़-2005 में अन्तर्निहित दर्शन पर शिक्षकों के लिए कोई प्रभावी पुनर्शिक्षा नहीं हुई है जो उन्हें अपने शिक्षण के तरीक़ों को बदलने के लिए प्रेरित करे, इसलिए अधिकांश शिक्षक अभी भी पाठ्यपुस्तक के पाठ को अपनी शिक्षण प्रक्रिया के केन्द्र में रखते हैं। पाठ्यपुस्तकें बेशक नई हैं, लेकिन उन्हें पढ़ाने का तरीक़ा वही पुराना है। ऐसी हालत में इन पाठ्यपुस्तकों के उन प्रश्नों और अभ्यासों का क्या जिन्हें बड़े ध्यानपूर्वक बच्चों की स्वतंत्र सोच और विविधता के लिए सम्मान को उजागर करने के लिए डिज़ाइन किया गया है? कुछ स्कूलों में नई पाठ्यपुस्तकें वास्तव में ऐसा करने में मदद कर रही हैं – ऐसे स्कूलों में या ऐसी दुर्लभ कक्षाओं में जिनकी प्रकृति समर्थनकारी व लोकतांत्रिक है। अन्य कक्षाओं में पाठ्यपुस्तकें शायद समस्याएँ हल करने की बजाए उन्हें पैदा करती हैं। उदाहरण के लिए यह प्रश्न देखिए, *क्या तुम्हारे साथ कभी ऐसा हुआ है कि भूख लगी हो और कुछ भी खाने को नहीं मिला? यदि हाँ, तो क्यों? (एनसीईआरटी, 2007a: 39)*। जब एक वंचित और कमज़ोर बच्चा खाते-पीते परिवार के बच्चों के आगे भूख और ग़रीबी को स्वीकार करता है तो हो सकता है कि वह अपने आप को और अधिक असुरक्षित महसूस करे। इस प्रणाली से उसे समर्थन नहीं मिलता।

साथ में एक चित्र भी है जिसमें बच्चे गोल घेरे में बैठे हुए हैं और बता रहे हैं कि उन्होंने पिछली रात को क्या खाया था। एक का कहना है कि उसके घर में कुछ भी नहीं पकाया गया था। लेकिन उसकी ग़रीबी को कम आपत्तिजनक रूप में दिखाया गया है : उसके कपड़े दूसरे बच्चों की तरह साफ़-सुथरे हैं और उसके शरीर में स्पष्ट रूप से दिखाई देने वाले कुपोषण के कोई संकेत नहीं हैं *(एनसीईआरटी, 2007a: 38)*। यह एक आदर्शीकृत छवि है, उसकी प्रस्तुति ईमानदारी के साथ नहीं की गई है। यह पाठ बच्चों से अपनी वास्तविक दुनिया के बारे में बात करने का आग्रह करता है, लेकिन वंचित बच्चे की वास्तविकता को पूरी तरह से स्वीकार करने में विफल होने के कारण उसका आदर नहीं कर पाता। अभाव को सरसरी नज़र से देखा गया है, अप्रिय वास्तविकताओं को नज़रअन्दाज़ कर दिया गया है। एक फुटनोट में कहा गया है "बच्चों के साथ सौहार्द-स्थापन करना और ऐसा माहौल बनाना ज़रूरी है जहाँ वे ख़ुद को स्वतंत्र रूप से व्यक्त कर सकें और उनके विचारों को सहिष्णुता के साथ सुना जाए" *(एनसीईआरटी, 2007a: 39)*। पर जब बच्चे ख़ुद को व्यक्त करना शुरू करते हैं तो *सहिष्णुता* शब्द से व्यक्त होने वाले सुगमीकरण से कहीं उच्च प्रकार के सुगमीकरण की आवश्यकता होती है। शिक्षक

को एक सुरक्षित माहौल सुनिश्चित करना है, जहाँ वे और उनके विद्यार्थी एक-दूसरे की वास्तविकताओं और विविधताओं से भरी दुनिया को लेकर, आलोचनात्मक रवैया न रखते हों, बल्कि उनकी परवाह और सम्मान करते हों (सिर्फ़ सहनशील होना काफ़ी नहीं)। आत्म-अभिव्यक्ति को अपने आप में एक लक्ष्य नहीं, बल्कि एक परिपक्व और संवेदनशील मानव के विकास की जटिल प्रक्रिया का हिस्सा माना जाना चाहिए।

वास्तव में हमारी कक्षाओं को शायद ही सुरक्षित स्थान कहा जा सकता है क्योंकि वे एक विशाल समाज का व्यापक प्रतिनिधित्व करती हैं। अधिकांश कक्षाएँ जाति, वर्ग, लिंग, धर्म के आधार पर मतभिन्नता और पूर्वाग्रहों से ग्रस्त हैं। पाठ, अभ्यास या शिक्षण विधा द्वारा उत्तेजित किए जाने पर ये सरेआम उभरकर सामने आ सकते हैं। प्रबल भावनाएँ पैदा हो सकती हैं – पीड़ा, शर्मिन्दगी, क्रोध, अपराध बोध, आक्रामकता, अहंकार आदि। सुगमकर्ता की भूमिका निभाने के लिए शिक्षकों को ग़ैर-निर्णयात्मक होना होगा तथा तर्कपूर्ण चर्चा और सावधानीपूर्वक पोषित विश्वास के ज़रिए मतभिन्नता को बदलना होगा। प्रभावी शिक्षक विद्यार्थियों को उनके अनुभवों पर चिन्तन करने, सक्रिय रूप से दूसरों को सुनने, विविध वास्तविकताओं का विश्लेषण करने और सामाजिक संरचना, असमानताओं और अन्याय पर व्यापक दृष्टिकोण विकसित करने में मदद करते हैं। इस तरह के शिक्षक लोकतांत्रिक सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ अपने और विद्यार्थियों के व्यक्तिगत विकास के लिए भी गहन रूप से प्रतिबद्ध होंगे।

अगर शिक्षा को परिवर्तनकारी होना है तो पहले शिक्षक को बदलना चाहिए! यह बात बिल्कुल सच है कि : "बच्चे को पूर्वाग्रह से मुक्त होने के लिए सक्षम करना हो तो सबसे पहले अपने भीतर के सभी पूर्वाग्रहों को तोड़ना होगा... निरन्तर पूछताछ और सच्चे असन्तोष से ही रचनात्मक बुद्धिमत्ता आती है।" *(जे. कृष्णमूर्ति 2008: 54-56)*।

शिक्षकों की ओर से विशुद्ध प्रतिबद्धता के बजाय हम अकसर सिर्फ़ राजनीतिक रूप से सही होने का प्रयास करते हैं और इस प्रकार घिसी-पिटी बातों को एक नई अवधारणा के रूप में पेश करने की कोशिश करते हैं।

शिक्षकों के साथ निरन्तर काम करने से महत्त्वपूर्ण बदलाव आ सकते हैं। यदि शिक्षकों के साथ सम्मान के साथ सम्पर्क किया जाए और एक पारदर्शी व भागीदारीपूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया के माध्यम से पहल की जाए तो वे असाधारण रूप से प्रेरित हो सकते हैं, जैसा कि एकलव्य ने मध्य प्रदेश में लम्बे समय तक शिक्षकों के साथ काम करके किया। एकलव्य की टीम सामान्य स्कूलों के शिक्षकों और विद्यार्थियों के साथ गहनता से जुड़ी जिसके कारण ये परिणाम सामने आए : 'समृद्ध और अधिक विशद छवि के बारे में बात की गई, घिसे-पिटे स्पष्टीकरण से परे विशद स्पष्टीकरण की ओर जाने की क्षमता, सामाजिक घटनाओं के अन्तर्सम्बन्ध की शुरुआत, और 'अन्य' लोगों को कम निर्णयात्मक तरीक़े से देखना।'

एकलव्य के शिक्षाविदों को एहसास है कि परिवर्तन की वास्तविक प्रक्रिया बहुत लम्बा समय लेती है और बहुआयामी है; अभी भी बहुत कुछ किया जाना बाकी है : "हमने बच्चों के साथ अपने अनुभवों से सीखा है कि बहुत सारी ग़ैर-पाठ्य गतिविधियाँ आवश्यक हैं – मौखिक कथन, चित्र बनाना, मिट्टी की चीज़ें बनाना आदि। उन्हें अपने लेखन पर अधिक फीडबैक दिया जाना चाहिए, पाठ्यों की संरचना के बारे में अधिक उन्मुखीकरण, पढ़ने और तैयारी करने के लिए अधिक समय, शिक्षकों से अधिक चौकस चर्चा और स्पष्टीकरण तथा अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बात यह कि पाठों के शिक्षण के दौरान उन्हें अपने अनुभवों के बारे में बात करने के लिए और अधिक अवसर मिलने चाहिए" *(पालीवाल और सुब्रमण्यम, 2010: 43-47)*।

पाठ्यक्रम का निष्पादन : इस दौरान होने वाला ह्रास

एनसीएफ़-2005 शिक्षण-अधिगम विधियों में लचीलेपन की सिफ़ारिश करता है, ताकि "शिक्षार्थी द्वारा ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया सक्रिय रचना की प्रक्रिया बन जाए" *(एनसीएफ-2005: 26-27)*।

मगर, केन्द्रीय राष्ट्रीय पाठ्यचर्या और इसमें शामिल शिक्षण-अधिगम के विशिष्ट स्वीकृत वैकल्पिक साधनों के बीच तनाव है। एक समायोजित शैक्षिक नौकरशाही के भीतर उत्पादित पाठ्यपुस्तकें एक बड़े पैमाने की शिक्षा व्यवस्था का हिस्सा हैं, जिसमें पाँच करोड़ प्रतियों को छापने की आवश्यकता होती है *(गोहेन, 2018)*।

जो शिक्षक और विद्यार्थी पुराने तरीक़ों का ही प्रयोग करते रहना चाहते हैं, प्रौद्योगिकी उनके बचाव का साधन बनती है! इंटरनेट ऑनलाइन गुरुओं से भरा हुआ है जो समाधान प्रदान करते हैं और प्रश्न पत्र हल करते हैं। शिक्षकों, ट्यूशन और ऑनलाइन गुरुओं के रूप में अब विद्यार्थियों के लिए ऐसी पर्याप्त पची-पचाई सामग्री उपलब्ध है, जिसे वे याद कर सकते हैं, अपनी रचनात्मक सोच और पूछताछ के कौशल को विकसित करने की ज़रूरत ही नहीं! यदि पूर्व-निर्धारित पाठ्य, उदासीन शिक्षक और ट्यूटर (आमने-सामने और ऑनलाइन) सीखने की प्रक्रिया पर हावी हो जाते हैं, तो शिक्षार्थियों द्वारा ज्ञान के सक्रिय निर्माण के अवसरों के साथ गम्भीर रूप से समझौता करना पड़ता है।

यहाँ मैं ऑनलाइन गुरुओं से लिए गए कुछ उदाहरणों की सूची प्रस्तुत कर रही हूँ : ऐसे कुछ 'समाधान' जो नेट पर सरसरी खोज से प्राप्त हुए। वैसे तो इस प्रकार की कई वेबसाइटें हैं, पर मैं CBSE *tuts* नामक वेबसाइट के उदाहरण दे रही हूँ। मैंने जो उदाहरण *(भाग्या, 2018)* लिए हैं वे दसवीं कक्षा के राजनीतिविज्ञान के विद्यार्थियों के लिए हैं और *जाति, धर्म और लैंगिक मसले (एनसीईआरटी, 2008: 39-56)* नामक अध्याय से सम्बन्धित हैं :

प्रश्न : भारत में जातिवाद को रोकने के उपाय सुझाइए।

उत्तर : 1. शिक्षा का प्रसार.....; 2. आर्थिक समानता.....; 3. आरक्षण का उन्मूलन – सरकारी नौकरियों, शिक्षा और अन्य क्षेत्रों में आरक्षण के कारण दो अलग-अलग जातियों के सदस्यों के बीच परस्पर विरोधी रवैया पैदा होता है। जब पर्याप्त शैक्षणिक योग्यता वाले उच्च जाति के लोग सभी सुविधाओं से वंचित हो जाते हैं तो वे निम्न जाति के लोगों के ख़िलाफ़ विद्रोह कर देते हैं।

प्रश्न : भारतीय समाज में लैंगिक विभाजन का क्या अभिप्राय होता है? लैंगिक आधार पर राजनीतिक लामबन्दी सार्वजनिक जीवन में किस हद तक महिलाओं की भूमिका को बेहतर बनाने में मदद करती है?

उत्तर : भारतीय समाज में पुरुषों और महिलाओं द्वारा निभाई जाने वाली भूमिकाओं के बीच अन्तर करने के लिए लिंग के अन्तर को सामाजिक रूप से निर्मित आधार के रूप में लिया जाता है। कार्य को लैंगिग रूप से विभाजित करना समाज की मानसिकता बन गई है। इस वजह से महिलाएँ भेदभाव का सामना करती हैं और पितृसत्तात्मक व्यवस्था की शिकार बन गई हैं। समानता और स्वतंत्रता की अवधारणाओं को अपनाने के बाद भी, हमारे पास व्यावहारिक दृष्टिकोण की कमी है। इसलिए यह आवश्यक है कि राजनीतिक लामबन्दी सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की भूमिका को बेहतर बनाने में मदद करे। राजनीतिक दलों को राष्ट्रीय और स्थानीय राजनीति में महिलाओं के समान प्रतिनिधित्व के लिए नीतियाँ तैयार करनी चाहिए। यह महिलाओं के लिए क्षितिज को विस्तृत करेगा। निर्णय लेने में भागीदार बनने से उन्हें अपने दिन-प्रतिदिन के कार्यों में प्रोत्साहन मिलेगा। उनमें परिपक्वता और ज़िम्मेदारी विकसित होगी।

प्रश्न : साम्प्रदायिकता को एक विचारधारा के रूप में परिभाषित करें।

उत्तर : साम्प्रदायिकता का अर्थ है किसी विशेष सम्प्रदाय के प्रति दृढ़ विश्वास, विशेष रूप से किसी धार्मिक सम्प्रदाय के प्रति; और यह भावना अकसर दूसरों के प्रति अतिवादी व्यवहार या हिंसा की ओर ले जाती है। साम्प्रदायिकता विभिन्न धार्मिक समुदायों से सम्बन्धित लोगों को न तो बर्दाश्त कर पाती है और न ही सम्मान दे पाती है।

नेट पर उपलब्ध कराए गए उपर्युक्त उत्तर और पाठ्यपुस्तकों में सिखाई जाने वाली बातें परस्पर विरोधी हैं। वे सर्वथा अज्ञानतापूर्ण, प्रतिगामी, जातिवादी/ पितृसत्तात्मक/ साम्प्रदायिक हैं। और फिर भी, कई विद्यार्थी इस तरह की वेबसाइटों का

उपयोग करते हैं और प्रशंसात्मक टिप्पणियाँ लिखते हैं, ऐसी निम्न स्तरीय सामग्री का आभार मानते हैं जिसे वे बिना सोचे-समझे रट सकें।

कोठारी आयोग का कहना है : "……मुख्य रूप से याद करने/रटने पर आधारित स्कूल की प्रणाली को समझ, सक्रिय सोच और रचनात्मकता वाली प्रणाली में बदलना एक लम्बा और बोझिल काम है। हर क़दम, एक क़दम नहीं है, अपितु किसी अज्ञात में छलाँग लगाने के समान है..." *(कोठारी, 1966)*।

जहाँ तक सामाजिक विज्ञान का प्रश्न है, एक ग़लत क़दम कक्षाओं को सार्थक जुड़ाव और परिवर्तन की बजाए खुले संघर्ष की आग में झोंक सकता है और अन्यायपूर्ण शक्ति, पीड़ा और हिंसा को मज़बूत कर सकता है।

पाठ्य और सन्दर्भ

मैं अब एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकों में कुछ ख़ामियों – जो कि वंचित बच्चों और समुदायों के सन्दर्भ में एक प्रकार का लोकतांत्रिक नुक़सान है – की ओर ध्यान दिलाना चाहती हूँ।

तीसरी और चौथी कक्षा की ईवीएस पाठ्यपुस्तकों *(एनसीईआरटी, 2007a:x; एनसीईआरटी, 2007b v-vi)* में *शिक्षकों और अभिभावकों के लिए दो शब्द* में कहा गया है : "पुस्तक में ऐसी गतिविधियाँ जो बच्चों को बाग़-बग़ीचे, खेत, तालाब के किनारे और समुदाय आदि के बीच अवलोकन के लिए ले जाने की माँग करती हैं इस बात को दोहराती हैं कि ईवीएस की पढ़ाई मुख्य रूप से कक्षा की चारदीवारी के बाहर होती है।"

तीसरी कक्षा में ये गतिविधियाँ दी गई हैं :

एक पेड़ के नीचे कुछ समय बिताओ। जानवरों को ध्यान से देखो।

अपने स्कूल या घर के पास एक पेड़ चुनो और उससे दोस्ती करो।

बाहर जाओ और पेड़ों पर, पानी में, ज़मीन पर, और आस-पास झाड़ियों में पक्षियों को देखो। तुम कितने पक्षियों को देख सकते हो?

किन्हीं तीन पक्षियों की आवाज़ों की नक़ल करो। पक्षियों के गिरे हुए पंखों को इकट्ठा करो।

तुम्हारे घर के आस-पास उगने वाले पौधों को पानी कहाँ से मिलता है? *(एनसीईआरटी, 2007a: 8,17,54,60)*।

गीता कुमारी शहरी झोपड़पट्टी में स्थित एक प्राथमिक विद्यालय की शिक्षिका हैं। वे इनमें से किसी भी गतिविधि को नहीं करवा पाईं क्योंकि उनके स्कूल में या आस-पास पेड़, पौधे या पक्षी थे ही नहीं! एक अन्य गतिविधि के तहत बच्चों को डाकघर ले जाना था *(एनसीईआरटी, 2007a:115)*, उन्होंने ऐसा करने की कोशिश की और उसे पूरी तरह से अव्यावहारिक पाया : "स्कूल मुझे बच्चों को वहाँ ले जाने की अनुमति नहीं देता क्योंकि मैं निकटतम डाकघर जाने के लिए दो किलोमीटर की पैदल यात्रा के दौरान 45 लड़कियों की सुरक्षा कैसे सुनिश्चित करूँगी?"

गीता की कक्षा में *रिक्शा चालकों* के कुछ बच्चे पढ़ते हैं। गीता का कहना है कि जिस तरह का वातावरण पाठ्यपुस्तकों में दिखाया गया है उसके साथ ये बच्चे तालमेल नहीं बैठा पाते क्योंकि वहाँ मस्ती, बेफ़िक्री और आराम की भावना झलकती है जिसे ये बच्चे समझ नहीं पाते। कामकाजी वर्ग के बच्चे चमकदार और ख़ुशगवार चित्रों और पाठ्यपुस्तकों की प्रवाहपूर्ण भाषा के साथ आसानी से नहीं जुड़ पाते। ये पुस्तकें कीचड़ और गन्दगी, पीड़ा और कष्ट, अनादर और अभाव, जो उनकी रोज़मर्रा की दुनिया का एक बड़ा हिस्सा हैं, को स्वीकारने में विफल होती हैं।

सामाजिक-राजनीतिक सरोकार भाषा/साहित्य की पाठ्यपुस्तकों में भी परिलक्षित हैं। चौथी कक्षा की हिन्दी पाठ्यपुस्तक *(एनसीईआरटी, 2007d: 97-102)* में *सुनीता की पहिया कुर्सी* नामक कहानी दी गई है जिसमें सुनीता का वर्णन है जो एक विशेष क्षमता वाली लड़की है, ख़ुद बाज़ार जा रही है, एक छोटे मित्र अमित की मदद से किराने की दुकान में प्रवेश करती है; बाद में दोनों पहिया-कुर्सी पर सवार होकर तेज़ी से सड़क पर आगे बढ़ जाते हैं। इस कहानी में यह बताने की कोशिश की गई

है कि विकलांग बच्चा भी अन्य बच्चों की तरह 'सामान्य' होता है : लेकिन इस मामले को बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया है और उसकी स्वतंत्रता का वर्णन अतिशयपूर्ण प्रतीत होता है। सुनीता का एक अन्य बच्चे को पहिया-कुर्सी पर चढ़ाकर सड़क पर जाने का चित्रण अवास्तविक और ख़तरनाक है। पहिया-कुर्सी का उपयोग करने वालों को दैनिक जीवन की गतिविधियों के लिए अकसर कुछ सहायता की आवश्यकता होती है जैसे कि तैयार होने या भोजन करने के लिए आदि। यह कहानी उनके लिए अपकार का प्रदर्शन कर सकती है, उनकी मुश्किलों को महत्त्वहीन बना सकती है और उनकी आवश्यकताओं को धुँधला कर सकती है। वास्तव में यह कहानी 'सामान्यता' की एक नई रूढ़िबद्ध धारणा को थोपती हुई सी प्रतीत होती है, जो वास्तव में एक विशेष क्षमता वाले बच्चे से एक नई अपेक्षा करती है और उस पर दबाव डालती है।

तीसरी, चौथी और पाँचवीं कक्षा की एनसीईआरटी, हिन्दी की पाठ्यपुस्तकें (*एनसीईआरटी*, 2007c, *एनसीईआरटी*, 2007d, *एनसीईआरटी*, 2007e) भी लिंग की दृष्टि से अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं हैं। इन तीनों पाठ्यपुस्तकों में पात्रों की गिनती करें तो एक चौंकाने वाला असन्तुलन देखने को मिलता है : पाठ में वर्णित 75% चरित्र पुरुष और 25% महिलाएँ हैं। इसी तरह दृश्य निरूपण में भी अत्यधिक असन्तुलन है : चौथी कक्षा की पाठ्यपुस्तक के रेखा-चित्रण में 74% पुरुष हैं, और 26% महिलाएँ *(मेहरोत्रा और रामचन्द्रन, 2010: 54-61)*।

हिन्दी भाषा की पाठ्यपुस्तकें	कुल पात्र	पुरुष पात्र	महिला पात्र
कक्षा 3, 4, 5 (तीनों को मिलाकर) : पाठ्य	162	121 (75%)	41 (25%)
कक्षा 4 : चित्र	381	280 (74%)	101 (26%)

इस तरह का असन्तुलित लिंग चित्रण बच्चों के सामने अत्यधिक मर्दाना और पुरुष प्रधान दुनिया प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त लड़कियों और महिलाओं को समूहों में शायद ही कभी दिखाया जाता है, जबकि लड़के और पुरुष समूह में होते हैं – गेंद खेलते हुए, शिक्षक के साथ छात्र, बाज़ार में, सड़क पर आदि। और हालाँकि महिलाओं को विविध व्यवसायों को अपनाते हुए दिखाया जाता है लेकिन बात जब घर के कामों की हो तो अधिकतर महिलाओं को ही उन्हें करते हुए दिखाया जाता है मानो कि यह एक सहज स्वाभाविक बात है।

चित्र-1 : *घरेलू काम अधिकतर महिलाओं द्वारा किए जाते हैं, और इसे बहुत 'स्वाभाविक' लगने वाले तरीक़े से प्रस्तुत किया जाता है : जैसा कि 'सुनीता की पहिया कुर्सी' शीर्षक वाली कहानी के इस चित्र में (एनसीईआरटी, रिमझिम 4, कक्षा-4 के लिए हिन्दी की पाठ्यपुस्तक, पृ. 98)*।

पाठ्यपुस्तकें राजनीतिक रूप से सही सन्देश देने की कोशिश करती हैं, लेकिन कभी-कभी इसका परिणाम सच्चाई को छिपाना या परिष्कृत पाखण्ड होता है। उदाहरण के लिए ईवीएस की तीसरी कक्षा की पाठ्यपुस्तक *(एनसीईआरटी, 2007a: 134)* के 'बूँद-बूँद से' पाठ में तालाब से घड़े में पानी लाने वाली महिलाओं और लड़कियों से सम्बन्धित पाठ्य और दृश्य हैं और इस आशय का एक फुटनोट है "ऊपर चित्र में महिलाओं को दूर जाकर पानी लाने तथा पानी भरते हुए दिखाया गया है। लिंग-भेद से जुड़ी बातों/समस्याओं पर कक्षा में चर्चा करवाएँ।" वैसे तो यह उद्देश्य प्रशंसनीय है, लेकिन

चित्र-2 : *एक 'असुर' जिसे हीरो-लड़का मारना चाहता है, जैसा कि राम ने किया था : एक खतरनाक चित्रण : 'खिलौने वाला, (एनसीईआरटी, रिमझिम 5, कक्षा-5 के लिए हिन्दी की पाठ्यपुस्तक, पृ. 21)*

पाँचवीं कक्षा की हिन्दी भाषा की पाठ्यपुस्तक में 'खिलौने वाला' कविता *(चौहान, 2007: 20-23)* बहुत सुन्दर तरीक़े से शुरू होती है, जिसमें एक छोटा लड़का एक फेरीवाले खिलौना-विक्रेता की चीज़ों को देखता है। वह किसी असुर स्त्री या असुर का वध करने के लिए एक तलवार तथा धनुष-बाण ख़रीदने का फ़ैसला करता है। साथ में दिए गए चित्र में एक असुर, एक वनवासी को दिखाया गया है, जिसे एक आदिवासी के रूप में भी देखा जा सकता है। वास्तव में, एक आदिवासी समूह जिसे असुर कहा जाता है, आज भी झारखण्ड में रहता है।

यह चित्रण अत्यन्त समस्यापूर्ण है : ख़ासकर ऐसे समय में जब कॉर्पोरेट और राज्य बलों द्वारा भूमि अधिग्रहण के कारण आदिवासियों को जबरन विस्थापित किया जा रहा है। इस तरह के साहित्यिक और दृश्य रूपकों के माध्यम से आदिवासियों को बुरे लोगों के रूप में पहचाना जाने लगता है, जिन्हें मारना नीतिवान लोगों के लिए न्यायसंगत ठहराया जाता है। राम के एक आक्रामक और अति-मर्दाने रूप का रक्षण किया जाता है और इसमें कोई सन्देह नहीं है कि स्कूल के लड़कों को इस रूढ़िबद्ध धारणा का अनुकरण करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। कुछ अभ्यास यह मानकर बुरी स्थिति को और बदतर बनाते हैं कि सभी विद्यार्थी पहले से ही राम, रामायण और रामलीला से परिचित होंगे और इसलिए वे कविता को कोई भी धर्मनिरपेक्ष, ऐतिहासिक ढाँचा प्रदान करने में विफल रहते हैं।

दीप्ति प्रिया मेहरोत्रा एक स्वतंत्र अध्येता हैं। उन्होंने दयालबाग शैक्षिक संस्थान, आगरा के समाजशास्त्र और राजनीति विज्ञान विभाग (2017-18) में एवं अतिथि संकाय के रूप में बीएलएड, लेडी श्री राम कॉलेज; एमएलएड, टीआईएसएस; तथा स्कूल ऑफ ह्यूमन स्टडीज, अम्बेडकर विश्वविद्यालय दिल्ली में पढ़ाया है। वर्तमान में, वे आईएएटी, गुरुग्राम में 'शिक्षा में दार्शनिक परिप्रेक्ष्य' पढ़ाती हैं। उन्होंने विश्वविद्यालय के साथ-साथ इग्नू, एनसीईआरटी और एनआईओएस में पाठ्यक्रम तैयार किया है। पारम्परिक ज्ञान, एकल माताएँ, शान्ति सक्रियतावाद, सामाजिक-राजनीतिक आन्दोलन जैसे विषयों पर उनकी रचनाएँ व्यापक रूप से प्रकाशित हुई हैं। वे शोध, मूल्यांकन, प्रशिक्षण और सलाहकार भूमिकाओं में विविध संगठनों के साथ काम करती हैं। सम्प्रति वे नारीवादी स्ट्रीट थियेटर पर एक पुस्तक लिख रही हैं। उनसे deeptipm@gmail.com सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : नलिनी रावल **पुनरीक्षण :** प्रीति मिश्रा **कॉपी एडिटर :** कामिनी उपाध्याय